कहानी

आर्ट गैलरी

कुमार अम्बुज

दोपहर बाद अचानक तेज़ बारिश आ गई। यह संयोग था कि उस समय मैं कला भवन के बगल से गुज़र रहा था। अन्यथा आसपास दूर तक कोई जगह ऐसी नहीं थी कि बारिश से बचा जा सकता। मैंने तुरन्त ही मोटर-साइकिल स्टैंड पर लगाई और छोटा-सा चौगान पार करता हुआ कला-भवन के बरामदे में पहुँच गया। वहाँ खड़े होकर, रूमाल से सिर और चेहरा पोंछते हुए मैंने बारिश का नज़ारा लेना शुरू किया। क्या बारिश हो रही थी! झमाझम। बाल-बाल बच गया वरना आज तरबतर हो जाता। बारिश को देखो तो लगता था कि जल्दी रुकेगी नहीं।

पाँच-सात मिनट बाद अपनी बाईं तरफ ध्यान दिया, बगल की गैलरी में चित्र प्रदर्शनी लगी थी। बरामदे में से ही तीन-चार चित्र नज़र आते थे। कला-भवन के सामने से हज़ारों बार गुज़रना हुआ है लेकिन चित्र देखने का मौका और समय नहीं मिला। सच्चाई यह थी कि आधुनिक चित्रकला समझ से बाहर थी, यद्यपि अनेक बार उत्सुकता भी हुई।

गैलरी के दरवाज़े पर दाढ़ीवाला एक अधेड़, हाथ बाँधकर अन्यमनस्क भाव से बारिश देख रहा था। मैंने सोचा, आज पेंटिंग्स देखी जाएँ। मैं आगे बढ़ा तो वह दाढ़ीवाला उत्साह में, या हो सकता है औपचारिकता में ही, मुस्कराया। मैंने हाथ मिलाते हुए पूछा, "ये चित्र आपके हैं?"

उसने कुछ शरमाते हुए जैसे मेरा स्वागत किया। हाथ के इशारे से अन्दर आने को प्रोत्साहित करते हुए बोला, "हाँ, आइए, देखिए!" फिर रुककर जैसे बुदबुदाया, "सोचता था आज शनिवार है इसलिए काफी लोग प्रदर्शनी देखने आएँगे लेकिन बारिश ने तय कर दिया है कि शायद अब कोई नहीं आ सकेगा।"

"इसी बारिश ने तय किया है कि मैं आपके चित्र देखूँ।" मैंने जवाब दिया तो वह फिर मुस्कराया। उसकी मुस्कराहट दाढ़ी में खिलकर उभरती थी और उसे कुछ पारदर्शी बनाती थी।

"मेरा नाम पंकज है।"

"मैं असगर हूँ," उसने गर्मजोशी से कहा। उसकी पुतलियाँ लगातार घूमती थीं।

इस तरह मैं उसके चित्रों के पास चला गया।

"आप मेरे साथ रहना पसन्द करेंगे? मैं इन चित्रों को आपके साथ देखना चाहूँगा।" मैंने अनुरोध किया।

"हाँ, ज़रूर। मुझे भी अच्छा लगेगा। आप चित्र देखेंगे, मैं आपका चेहरा देखूँगा। इस तरह मुझे भी अपनी पेंटिंग्स के बारे में नया कुछ पता चलता रहेगा।"

"लेकिन...," मैंने कुछ झिझकते हुए कहा, "मैं आपका साथ इसलिए चाहता हूँ कि आप मुझे इन पेंटिंग्स के बारे में बताते रहें। दरअसल, मुझे मॉडर्न पेंटिंग पूरी तरह समझ में नहीं आती।"

वह जवाब में मुझे नई निगाह से देखने लगा।

"सच मानिए, मैं इन्हें समझना चाहता हूँ। मेरी मदद कीजिए।" मैंने इसरार किया।

"चलिए, कोशिश करता हूँ। लेकिन आप जान लें कि कुछ चीज़ों को, खास तौर पर कला को, समझाया नहीं जा सकता। समझने का काम आदमी को खुद ही करना पड़ता है। इसके लिए कोई दूसरा आदमी काम पर नहीं लगाया जा सकता। संसार में अनेक चीज़ें इसी तरह की होती हैं, जैसे संगीत सुनना, सूर्योदय देखना...। सब अलग-अलग तरह से सुनते-देखते हैं, समझते हैं।"

"हाँ-हाँ। मैं समझ रहा हूँ। मगर आप मेरी सहायता कीजिए। आप यहाँ हैं तो इस मौके का फायदा मुझे मिलना चाहिए।"

वह मेरे साथ दो कदम चला और कोने वाली, पहली पेंटिंग के सामने खड़ा हो गया। "मैं फिर कह दूँ कि समझाने से ज़्यादा बेहूदा और भटकाने वाला काम कोई नहीं है।" वह ठिठक-सा गया। मैंने उसकी तरफ फिर निवेदन भरी दृष्टि डाली।

उस पेंटिंग पर, जिसके सामने हम दोनों खड़े हो गए थे, पीला रंग वर्तुलाकार तरीके से ब्रश के स्ट्रोक्स के साथ पुता हुआ था। परिधि पर एक-दो जगह काला रंग भी लगाया गया था। चित्र को एकाध मिनट तक देखने के बाद मैंने उसकी तरफ अवश और

पराजित भाव से देखा।

"देखिए, मुझे डर है कि इन पेंटिंग्स की व्याख्या करूँगा तो जो आप अपनी तरह से समझ सकते हैं, उस पर भी बिजली गिर जाएगी।"

"आप कुछ भी बताएँ, कहें, मुझे मदद ही मिलेगी। इस मामले में मेरी समझ का स्तर काफी कम है। लेकिन मेरी रुचि है, आप यकीन कीजिए।" मैंने अपना अहम् भाव एक तरफ रखकर उससे जैसे चिरौरी की।

"आप अपनी भाषा में, अपनी तरह से कहें।" मैंने उसे चुप देखकर, रास्ता सुझाने की कोशिश की।

"हाँ, यह बेहतर होगा।" वह मुस्कराया नहीं बल्कि किंचित गम्भीर हो गया। फिर थोड़ा रुककर बोला, "इस पेंटिंग को बनाते समय दरअसल, मैं पीले रंग को समझने की कोशिश कर रहा था। तीन पूरे दिन मैंने इस काम को दिए।"

"लेकिन यह दो जगह काला रंग क्यों?"

"इसलिए कि पीले को समझ सकूँ। पीले के सम्मुख कोई रंग रहे। काला न लगाता तो पीला निरा पीला रह जाता। यह पीला जो पतझर में गिरे अशोक के सूखे पत्तों की तरह होता है, ठीक यही पीला, मेरे मन में चक्कर खा रहा था।"

"मगर पीले के सामने काला ही क्यों, नीला या लाल क्यों नहीं?"

"इसका भला क्या उत्तर हो सकता है! मुमकिन है कोई दूसरा चित्रकार नीला या लाल रंग लगा देता। मेरे लिए काला रंग अपनी तरह का तानाशाह है जिसमें एक उदारता भी है। वह अपनी उपस्थिति ज़ोरदार तरीके से बनाए रखता है लेकिन दूसरे को खत्म नहीं करता। केवल चुनौती देता है जिसकी आप उपेक्षा नहीं कर सकते।"

"इसे आप कोई नाम या शीर्षक देना चाहेंगे?"

"ज़रूरत नहीं है। लेकिन कहना चाहूँ तो 'खुशी'! इस पेंटिंग को बनाने के बाद भी मैं अशान्त बना रहा था। मगर कुछ हद तक प्रसन्न भी हुआ! आप ध्यान से देखेंगे तो इसमें आपको खुशी दिख सकती है। यदि आप चित्र में दिखाना चाहते हैं तो 'खुशी' को रंग में ढालना पड़ता है। यह कठिन है, लेकिन काम है। यह चित्रकार के पीछे लग जाता है।"

"हूँ, हूँ।" मैंने जैसे कुछ समझ लिया हो।

"मुमकिन है आपको इसमें खुशी न भी दिखे। आपके लिए प्रसन्नता का रंग कोई और हो सकता है।"

"हाँ, ठीक कह रहे हैं। बहुत अच्छा चित्र है।" अब मैंने समझ लेने का अच्छा अभिनय किया।

दूसरी पेंटिंग में कत्थई रंग की सुरंग जैसी आकृति थी, जो किसी दूसरी गहरी सुरंग में विलीन हो रही थी और अपने सुदूर किनारे पर एकदम अन्धी थी। "यह मुझे समझ में आ रहा

है।" मैंने आत्मविश्वास से कहा, "यह सुरंग है, एक और सुरंग में खत्म होती है। इसमें बहुत अँधेरा है।"

"हूँ, ऐसा भी कह सकते हैं। मेरे लिए यह हमारा वक्त है। हम अपने समय के अन्तरिक्ष में हैं। सिरे पर आपको जो अँधेरा दिख रहा है, वह सिरा मुख्य जगहों से इतनी दूरी पर है कि हमारी दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच पा रही है। सच तो यह है कि अभी वहाँ प्रकाश नहीं पहुँचा है।"

"अच्छा!" मुझे अपनी अक्ल पर शायद कुछ दुख हुआ।

"लेकिन यह भी हो सकता है कि यह सिर्फ मेरा कोई सपना भर हो," उसने कहना जारी रखा, "जो मैंने बचपन में कई बार देखा था। जब मैं छाती पर हाथ रखकर सो जाता था। अक्सर उस सपने में कोई मेरा पीछा करता था। मैं बदहवास भागता था, इतना कि सामने दिख रही सुरंग में घुस जाता था। लेकिन हर बार सुरंग खत्म हो जाती थी। आखिर निचाट अँधेरे में मैं पस्त हो जाता था।"

उसकी बात तो पूरी तरह नहीं पकड़ पाया लेकिन चित्र मुझे अच्छा लगा।

कोने में यह चित्र पिलर के पास में था। ढह रही किसी मीनार के आकार का। इसमें अनेक रंग लगे हुए थे। चटख रंग। जैसे यह रंगों की मीनार थी जो ढह रही थी। जगमगाते लाल, नीले, हरे, पीले और सफेद रंगों की छटा बिखर गई थी। इन सबके बीच एकाध ब्रश भूरे, मूँगिया और स्लेटी रंग का भी था लेकिन कुल मिलाकर रंगों की आभा उभरकर आती थी। मैं रीझ गया। मैंने सिर्फ इतना ही कहा, "कितना सुन्दर चित्र है। मैं नहीं कह सकता कि यह रंगों की मीनार है या कुछ और। लेकिन सुन्दर है।"

"इतना समझना काफी है।" उसने मुदित होकर कहा। "चित्र में किसी वस्तु की, किसी आदमी की या किसी दृश्य की ठीक-ठीक माँग करना, दरअसल उसकी तस्वीर खींचने की माँग करना है। आपने कितनी अच्छी बात कही कि मैं बता नहीं सकता यह क्या है, लेकिन सुन्दर है।"

"हाँ अब मैं कुछ करीब पहुँच रहा हूँ, शायद! यह मीनार न हो तब भी कितनी खूबसूरत है।"

"देखिए, मैं झील को झील, शेर को शेर और मेज़ को मेज़ बनाने के लिए रंगों को खराब नहीं कर सकता। यह काम कोई कैमरामैन बेहतर ढंग से कर लेगा और रंगों को खर्च किए बिना। पेंटर को हर क्षण याद रखना होता है कि वह चित्रकार है, फोटोग्राफर नहीं। उसे कुर्सी में से एक और कुर्सी निकालना होगा, खँडहर में से एक और खँडहर, स्त्री में से एक और स्त्री, एक रंग में से एक और रंग।"

वह अपनी रौ में आ गया। मेरी दिलचस्पी ने उसे उत्साहित कर दिया था।

"सच कहूँ तो इस चित्र में मेरी इच्छाएँ हैं। रंग-बिरंगी। जो कभी भी अटूट नहीं रह पातीं। कोई स्याह अन्तराल, स्लेटी रात, अवसाद से भरा रंग उनके रास्ते में आता है। लेकिन इससे उनकी रौनक कम नहीं होती। वे ढहती हैं और बनती हैं। किसी कवि ने कहा भी है कि मैं ढहाता हूँ तो आप कहते हैं कि बनाता हूँ। इन इच्छाओं में ही मेरा होना है। ये ढह रही हैं लेकिन रोज़ बन रही हैं। प्रसन्न और चमकदार। अपने होने में मगन।"

मुझे इस चित्र में आकर्षण लगा। मैं कुछ देर तक उसे देखता रहा।

वह मेरे करीब ही रहा। मुझे देखता हुआ।

***

अगले दो चित्र भी कुछ इसी तरह के थे। उतने चमकदार नहीं। उसने बताया कि ये उसी सीरीज़ के कुछ काम हैं। उसके बाद के चित्र में एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। कुछ अन्यमनस्कता से भरा।

"यह चारकोल से बनाया है। ये चित्र भी इच्छाओं के हैं। कई बार अनेक चित्र बनाने होते हैं, उस एक चित्र के लिए जो मन में तो बन जाता है लेकिन कैनवस पर नहीं बन पाता। कह सकते हैं कि ये वहाँ तक पहुँचने की यात्रा के चित्र हैं। यात्रा के रास्ते में जो कुछ मिला जैसे कोई पेड़, उस पर बैठी चिड़ियाँ, झरबेरियाँ, पहाड़ और ढलती हुई साँझ। या कुछ पत्थर जो चाँदनी में अजीब तरह से चमकते हैं। या वे मनुष्य, जिनके चेहरों पर इच्छाओं के रंग नहीं दिखते, मैं उन सबको बनाता जाता हूँ।"

"वाह!" मैंने उसके शब्दों की प्रशंसा की। उसने समझा होगा कि चित्रों की। उसे ऐसा लगा हो तो अच्छा है, मैंने सोचा।

यह छोटे कैनवस पर काम था। सिर्फ एक नीला धब्बा। आसपास नीले रंग के ही कुछ छींटे थे। उसका कुछ भी आशय समझ में नहीं आता था सिवाय इसके कि यहाँ नीले रंग का धब्बा था। उसने जैसे मेरी कठिनाई समझ ली। कहने लगा, "जब मैं तीसरी कक्षा में पढ़ता था, मैंने अपने सहपाठी की कॉपी पर स्याही की दवात गिरा दी थी। जानबूझकर। वह तब से मेरे दिमाग में बनी हुई है। नीले रंग का यह धब्बा मेरे पहले अपराध का धब्बा है।" वह दीर्घा की छत की तरफ देख रहा था। फिर यकायक कहने लगा, "इसमें कुछ लोगों को बचपन का उल्लास दिखता है।"

"वाकई, चित्र ऐसा कर सकते हैं।" मैंने जोड़ा। क्योंकि मुझे वह नीला रंग चित्ताकर्षक लग रहा था।

दाईं तरफ की दीवार शुरू हो गई थी। पहले ही चित्र में खजूर की पत्तियों का बना, हाथ से झलनेवाला छोटा-सा पंखा बना था। दूसरे कोने में एक लड़की, जिसका चेहरा मुरझाया था लेकिन वक्ष और केश उभरकर दिख

रहे थे। ऊपर दाईं तरफ कुएँ की जगत थी जिसमें रस्सी का एक सिरा कुएँ के भीतर था और बाकी पूरी रस्सी जगत पर पड़ी हुई थी। पृष्ठभूमि में हरा-पीला रंग था। "यह चित्र अच्छा लग रहा है। इसे देखकर कुछ चीज़ें याद आती हैं।"

वह खुश हो गया। "ठीक पहुँचे आप। यह चित्र उन चीज़ों के बारे में, उन लोगों के बारे में है, जो जीवन में से अचानक गायब हो जाते हैं और फिर आपको कभी नहीं मिलते। वे अब कभी हमें नहीं मिलेंगे।"

"मिल भी तो सकती हैं, ये सब चीज़ें। ये लोग। संयोगवश या कोशिश करने पर।"

"नहीं, कभी नहीं। हम उन्हें पहचान नहीं सकेंगे। उन तक पहुँच नहीं सकेंगे। हमारे उनके बीच का सम्बन्ध समाप्त हो चुका है। अब कुछ नहीं हो सकता। हमारी आयु के भीतर ही सघनतम रिश्तों की भी उम्र होती है। बीस साल, दस साल, तीन महीने, दो घण्टे या दो मिनट। रास्ते रहते हैं, पुल फिर कभी न बन सकने के लिए ढह जाते हैं। और फिर उस पार सब कुछ बदल जाता है, जैसा कि इस पार बदल गया होता है। हम एक गतिशील और बदलते हुए संसार में रहते हैं।" वह कुछ उदास हो गया। उसकी आवाज़ में फुसफुसाहट भर गई।

"जो अक्सर चित्रों को देखते हैं, नियमित दर्शक हैं, चित्रकार हैं या समीक्षक हैं, क्या वे चित्रों को कुछ ज़्यादा समझते हैं?" मैंने वातावरण को बदलने का प्रयास किया।

"हमेशा ऐसा नहीं होता। चित्रों को समझने से ज़्यादा उन्हें पहचानना होता है। उनमें खुद को या अपने ही किसी अनुभव को रख देना होता है। कला की समझ दुखों को, मुश्किलों को, मनुष्यों को, वृक्षों और कीड़ों को, शब्दों को, नदियों को, तारों को और आँसुओं को प्यार करने से आती है। जो प्यार नहीं कर सकते, वे कला को नहीं समझ सकते। वे अभिशप्त हैं कि खाएँ-पिएँ, मैथुन करें और मर जाएँ।" कुछ कड़वाहट भी उसके लहज़े में घुल गई।

"माफ करें, लेकिन प्यार करने से कला की समझ का सम्बन्ध भला क्या हो सकता है?"

"जिन चीज़ों को हम सचमुच प्यार करने लगते हैं, तो वे हमें हर रूप में, हर रंग में समझ में आने लगती हैं। जैसे हमारे बच्चे आवाज़ बदलकर बोलते हैं, मुखौटे लगाकर आते हैं या स्वाँग कर रहे होते हैं, तब भी हम पहचान लेते हैं कि ये हमारे ही बच्चे हैं। जीवन की दूसरी चीज़ों के साथ भी ऐसा ही होता है, बशर्ते हम जीवन से प्यार करते हों। सच्चा प्यार करते हुए हम कभी धोखा नहीं खा सकते।" कहते हुए उसने मेरी बाँह पकड़कर एक चित्र के सामने खड़ा कर दिया, जिसमें एक बच्चे के हाथ में किसी आदिवासी चेहरे का मुखौटा था।

"हम उन्हें पहचान लेते हैं। उनकी आवाज़ से, गन्ध से, उनके रंग से, कुलाँचों से और अबोधता से या चंचलता से। किसी भी चित्र में ऐसा कुछ नहीं होता जो प्रकृति में न हो, या जीवन में और हमारी कामनाओं में न हो।"

"मैं फिर माफी चाहूँगा यह पूछने के लिए कि कलाओं में, खासकर चित्रों में फिर जटिलता और अबूझपन क्यों शरीक हो जाता है? वे सीधे, सरल तो नहीं ही होते हैं।"

"आप कुछ हद तक सामान्य और सही बात कह रहे हैं। वह इसलिए कि चित्रों में सपनों का और विकलता का ही नहीं, और दूसरी इतनी चीज़ों का प्रवेश हो जाता है कि देखने-समझने वालों को भी वह यात्रा अपने भीतर करनी पड़ती है। रंगों की भी अपनी वासनाएँ और आकांक्षाएँ होती हैं, जो हर चित्रकार के साथ अपना रिश्ता बनाती हैं। फिर आपको स्मृतियों में, कल्पनाओं में भी जाना ही पड़ता है। जो सपनों की यात्राएँ नहीं कर सकते उनके लिए चित्र अबूझ हो जाते हैं। इसे आप उनकी नियति कह लें।" वह तेज़ गति से बोला और हाँफने लगा।

"लेकिन मुझे तो ये चित्र काफी कुछ समझ में आ रहे हैं। लगता है मैं कुछ यात्राएँ कर सकता हूँ।" मैंने किंचित मज़ाक किया। वह मुस्कराया। इसमें दोस्ताना लहज़ा शामिल था।

ठीक अगला चित्र मेरी समझ से बाहर था। उसमें एक कम्प्यूटर, एक रिक्शा, एक सूअर और एक मीनार समुद्र के बीचों-बीच थे और मछलियों की तरह तैरते दिखते थे। लगता है यह प्रलय का चित्र है या फिर समुद्र ही अपने किनारे की दुनिया का कोई सपना देख रहा है, मैंने मन ही मन सोचा और उसे अपना यह विचार बताया। वह फिर मुस्कराया, "देखा,

अब आपका दिमाग भी दौड़ने लगा। आपके और चित्र के बीच संवाद हो रहा है। आप यह सब देख रहे हैं या देख सकते हैं जो चित्रकार की तरह मैंने भी नहीं देखा या सोचा। इस तरह यह चित्र अपना नया जन्म ले रहा है। इसके नए संस्करण तैयार हो रहे हैं।" मैंने इसे अपनी प्रशंसा मानकर राहत की साँस ली।

"जबकि इसे बनाते समय, मेरे ज़ेहन में एक धर्मोपदेश था। मेरे घर में आने वाले एक बुज़ुर्ग बार-बार कुछ उद्धृत करते हुए कहा करते थे कि सब कुछ पानी का बना हुआ है। पूरी कायनात पानी की है। मुझे एक सुबह लगा कि अपने चित्र में, यदि मैं उन सबको भी पानी में रख दूँ जो पानी में नहीं रहते हैं तो ज़रूर एक दिलचस्प चित्र बनेगा। पानी को पानी में मिलाना ही ठीक होगा। विचित्र विचार था मगर मैंने ऐसा ही पेंट कर दिया। विचित्रताओं में भी अनेक चित्र रह लेते हैं।"

"लेकिन यह बात जँचती नहीं कि आप बनाएँ कुछ, और लोग समझें कुछ!"

"यह समझना ही तो कला से जुड़ना है। कला और गणित में फर्क है। कलाओं में एक जैसे उत्तर नहीं होते। वहाँ अलग-अलग जवाबों के साथ भी आप उत्तीर्ण हैं। कलाओं में सवाल होते हैं और आप अपने उत्तरों के साथ अपना जीवन गुज़ार सकते हैं। या परेशान रह सकते हैं। दरअसल, कला विज्ञान की जननी है। कला ही है जहाँ से मनुष्य असम्भव सपने दर्ज करने की शुरुआत करता है। और फिर एक दिन इन सपनों को पा ही लेता है, जो नामुमकिन दिखते हैं।"

***

अगले चित्र में एक हरी टहनी, चौखाने की कमीज़, लाल रिबन, एक कुर्सी जिसके पायों पर सागौन के तने की उम्र के वलय थे और एक घड़ी थी जिसके काँटे लटक चुके थे। ये सब चीज़ें कुछ बाँके-तिरछे ढंग से बनी हुईं थीं। "तरह-तरह की इन चीज़ों का यहाँ क्या अर्थ हो सकता है?" मैंने कुछ बेढंगेपन से पूछा। यह सोचते हुए कि आखिर हर चीज़ की हद होती है।

"यह उस उम्र की याद है जो बीत गई। लेकिन ये वे चीज़ें हैं जो अभी भी हमारे साथ हैं। यह खो देने और बने रहने को एक साथ व्यक्त करने की कोशिश है। यह भी कला का एक काम है।"

मुझे लगा कि इस आदमी के पास हर चित्र के लिए एक व्याख्या है, भले ही वह चित्र कुछ और कहता हो। लेकिन मैं चुप रहा क्योंकि तब यह कहेगा कि हाँ, ऐसा भी सोच सकते हैं।

अब मैं एक तितली के चित्र के सामने था। तितली काले रंग की थी लेकिन उसमें से सफेद रंग के चकत्तों का उजास फूटता था। परागकणों से लदा फूल, उसके भार से झुक गया

था। मैंने कहा, "यह तितली तो, लगता है कोई लड़की है।"

"शायद हो भी। मेरे लिए तो बस यह एक तितली है जो परागकणों को लगभग रौंद रही है।" रुककर फिर बोला, "लेकिन इस तरह एक मतलब लेना या देना बेकार की बात है। चित्रों को लेकर इतनी बातचीत करना, वास्तव में इन्हें उघाड़ना नहीं, इन्हें खरोंचना भी है। आप सोच रहे होंगे कि आपका काम आसान हो रहा है लेकिन यह वैसी ही आसानी है, जैसे मैं आपसे 'ध' धनुष का कहूँ और धकापेल के बारे में, धड़कन, धब्बा या धूल के बारे में चुप्पी लगा लूँ। और सात सुरों में से एक 'ध' को लतिया दूँ।"

इसकी बातें भी कुछ कम चित्रकारी से नहीं भरी हैं। मैंने सोचा।

"आप तो लेखकों की तरह बातें करते हैं।"

"शायद। मैं लेखक ही बनना चाहता था। लेकिन इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि आप लेखक हैं या चित्रकार या संगीतकार। दुनिया को अपनी तरह से, नए सिरे से समझना ही पड़ता है। मुझे लगता है कलाएँ इसमें हमारी सहायता करती हैं।"

मैं गैलरी के आखिरी चित्र जो लैंडस्केप था, के सामने खड़ा था। इसमें हरा-भरा दृश्य था जिसके बीचों-बीच एक रास्ता था। यह रास्ता फर्न जैसे पौधों के पीछे जाकर गायब हो रहा था। दाहिने, नीचे कोने में बड़ा-सा पत्थर था। पत्ते हवा में लहराने की मुद्रा में थे। पास ही किसी पेड़ का मोटा तना था। यह ऐसा चित्र था जो सहज ही समझ में आता था और कभी देखे गए जंगलों के बरसाती हरे दृश्य की याद दिलाता था। मैंने उससे कहा कि मुझे पचमढ़ी के रास्तों की याद आ रही है, खासकर जब आप पत्थरचट्टा की तरफ पैदल जाएँ। लेकिन वह तो निरा चित्रकार था। मुस्कराकर कहने लगा, "मैं इस चित्र को देखते हुए हमेशा कल्पना करता हूँ कि इस नीले-साँवले पत्थर पर जाकर अभी बैठ जाऊँगा। और मुझे यह उम्मीद होती है कि इस गुम होती पगडण्डी से अचानक कोई आदमी आता हुआ प्रकट हो जाएगा। यदि मुझे इतनी सम्भावना नहीं दिखती तो फिर मेरे लिए लैंडस्केप का कोई अर्थ नहीं।"

"हाँ, यह तो है।" मैंने सहमति में सिर हिलाया मानो मेरे लिए भी लैंडस्केप का यही अर्थ हो।

बाहर दरवाज़े की तरफ बढ़ते हुए मैंने पूछा, "विषय विशेष पर भी आप चित्रों की ज़ंखला बनाते हैं क्या? ऐसी प्रदर्शनी जिसे आप कोई एक शीर्षक दे सकें।"

"हाँ। मुम्बई में, 'जहाँगीर' में 'स्मृतियाँ' शीर्षक से मैंने एक प्रदर्शनी की थी। उसके बचे हुए कुछ चित्र यहाँ आपने देखे हैं। 'संगीत' और 'विस्मृति' पर भी। लेकिन अब...।" वह कुछ कहते-कहते रुक गया।

"नरसंहार!"
मैं चौंक गया।
कला प्रदर्शनी के लिए यह कुछ अटपटा शीर्षक नहीं है?
आप विचार कीजिए, मुझे तो लग रहा है कि यह पूरा समय ही अटपटा है। हम सबको मारा जा रहा है। हर उस आदमी को जो अपनी बात कर रहा है और अकेला है। या चुप है और मुश्किल में है।

"लेकिन क्या? कुछ नया करने जा रहे हैं?"

"हाँ, मैं अब 'नरसंहार' शीर्षक से कुछ चित्र पेंट कर रहा हूँ।"

"नरसंहार!" मैं चौंक गया। "कला प्रदर्शनी के लिए यह कुछ अटपटा शीर्षक नहीं है?"

"आप विचार कीजिए, मुझे तो लग रहा है कि यह पूरा समय ही अटपटा है। हम सबको मारा जा रहा है। हर उस आदमी को जो अपनी बात कह रहा है और अकेला है। या चुप है और मुश्किल में है।"

"मैं कुछ समझा नहीं।"

"जल्दी ही यह काम लेकर आऊँगा। आप देख सकेंगे।"

दरवाज़े के पास टेबल पर एक रजिस्टर रखा था। उस पर बड़े अक्षरों में 'प्रतिक्रिया' लिखा था। उसमें 20-25 प्रतिक्रियाएँ दर्ज थीं। मुझे भी लिखना चाहिए। सोचकर मैंने लिखा, "आपने आज दोस्ताना वक्त दिया, आभारी हूँ। आपके चित्र और बातचीत मुझे हमेशा याद रहेगी। अगली प्रदर्शनी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इन पेंटिंग्स के लिए बधाई!" इसके बाद मैंने अपना मोबाइल नम्बर लिख दिया। शायद मैं कुछ ज़्यादा लिखना चाहता था। लेकिन मुझसे यह गड़बड़ी हमेशा हो जाती है।

बारिश लगभग बन्द हो चुकी थी। धुला हुआ चौगान सामने था और नीम की टहनियाँ दिखती थीं। आसमान का एक छोटा-सा हिस्सा बादलों से भरा था। लॉबी में एक टूटी कुर्सी और बोरी का टुकड़ा पड़ा था। पास में एक आदमी ज़मीन पर ही बैठकर बीड़ी पी रहा था, शायद कला-भवन का कोई कामगार रहा होगा। इस पूरे दृश्य को मैंने एक चित्र की तरह देखा।

बाहर निकला तो हल्की फुहार की परत चश्मे पर आई। उसमें से मुझे सीढ़ियाँ, सड़क और चहारदीवारी ऐसी दिखीं मानो वे धुँधली तस्वीरें हैं और पिघल रही हैं। जैसे वे मेरी सुदूर स्मृति में से आ रही हैं और अभी साकार हो जाना चाहती हैं।

एक आदमी तेज़ चाल से दृश्य को पार करता, फ्रेम से बाहर जा रहा था। बगल की सड़क से, पृष्ठभूमि में सायरन की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

इस सबको भी आखिर एक दिन किसी-न-किसी चित्र का हिस्सा बन जाना है। मैंने सोचा।

कुमार अम्बुज: हिन्दी के प्रख्यात कवि एवं कहानीकार। भोपाल में रहते हैं।
सभी चित्र: लोकेश खोड़के: चित्रकार हैं। बड़ौदा के फैकल्टी ऑफ फाइन आर्ट्स से एम.एफ.ए.। इन दिनों एशिया आर्ट आर्काइव, दिल्ली से जुड़े हैं।